IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

विस्थापन की त्रासदी: जुलूस उपन्यास के संदर्भ में

डॉ. प्रीति कुमारी

सहायक प्राध्यापक

हिन्दी विभाग,

मगध महिला कॉलेज, पटना

सारांश: विस्थापन एक ऐसी त्रासदी है जिसके कारण कोई व्यक्ति, परिवार या परिवार का समूह पक्के तौर पर लंबे समय के लिए अपना जन्म स्थान छोड़कर अन्य किसी स्थान पर जा बसता है और पुनः उसके अपने जन्म स्थान पर वापस आने की कोई संभावना नहीं होती। स्थाई विस्थापन हमारे इतिहास में बहुत बार हुआ और जब जब हुआ तब तब उसने कभी न भरने वाले घाव दिए। सन 1947 का समय हमारे देश में ऐसे ही विस्थापन का समय रहा। वर्ष 1947 में हुए भारत पाक विभाजन ने अनगिनत लोगो को उनकी जड़ो से उखाड़ फेका। लोग अपनी जन्मभूमि अपनी संपत्ति छोड़-छाड़ कर भाग गए। लोगों को सिर छुपाने के लिए शरणार्थी कैंपों का सहारा लेना पड़ा। उन विस्थापितों के दर्द की कहानी कहता है यह जुलूस उपन्यास। इस उपन्यास का आरंभ ही होता है हल्दी चिरैया के एक सुरीले स्वर से- "का कस्य परिवेदना" अर्थात अपनी वेदना कहूं भी तो किससे। यह वेदना विस्थापन की वेदना है जो पूरे उपन्यास में पसरी है। विभाजन के लगभग 10- 15 वर्ष तक इधर उधर के शरणार्थी कैम्पों में रहने के बाद पूर्वी पाकिस्तान से आए हुए लोगों को पूर्णिया जिले के गोड़ियर गांव बसाया गया था। विस्थापित परिवारों की दारुण गाथा की शुरुआत तो उसी दिन हो गई थी जिस दिन उन्हें अपनी जन्मभूमि छोड़कर भागना पड़ा था। समय के साथ यह विपदा त्रासदी में तब बदलने लगी जब लगातार एक लंबे अंतराल तक उन्हें शरणार्थी कैंपों में अपनी पहचान विस्मृत कर जीना पड़ा। इस लंबी अवधि के बाद जब उन्हें स्थाई निवास मिला भी तो उनकी दुर्दांत गाथा का अंत नहीं हुआ अपितु स्थाई निवास के साथ पुनः शुरू हुआ एक नए ढंग का संघर्ष। यह संघर्ष आंतरिक और बाह्य दोनों स्तरों पर था। बाह्य स्तर पर गोड़ियर गांव के मूल निवासियों का इनसे विरोध था तो आंतरिक स्तर पर वे अपनी पहचान, परिवार और जन्मभूमि को खोने के दुख में अपने आप से संघर्षरत थे। इस संघर्ष की ही कहानी कहता है जुलूस उपन्यास।

बीज शब्द- विस्थापन, त्रासदी, शरणार्थियों, कैंप, जन्मभूमि, जुमापुर, परिवेदना, कॉलोनी, गोडियर गांव

विस्थापन एक ऐसी त्रासदी है जिसके कारण व्यक्ति या समुदाय अपनी जड़ों से उखड़ कर एक नई भूमि पर जा बसते है जहां एक बार फिर से उसे अपनी गृहस्थी बसानी होती है, अपनी भावनाओं को समेटना पड़ता है, अपनी संवेदना को उस भूमि विशेष से जोड़ना पड़ता है, अपने आवास व रोजगार की नई व्यवस्था तलाशनी होती है। विस्थापन अपने जन्मस्थान से एक नई जगह की ओर प्रस्थान की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति के अपनी मातृभूमि वापस लौटकर आने की कोई संभावना नहीं रह जाती और उसे पुनः अपनी जी हुई जिंदगी को भूल कर नए स्थान पर नए सिरे से जीवन का आरंभ करने को विवश होना पड़ता है।

हमारे समाज में विस्थापन के कई रूप देखने को मिलते हैं। कभी बेरोजगारी के कारण रोजगार की तलाश में तो कभी आपदाओं के कारण लोगो को विस्थापित होना पड़ता है। इस प्रकार के विस्थापन अस्थाई होते हैं अर्थात यह क्षणिक विस्थापन होते हैं। इसमें पुनः अपने निवास स्थान पर वापस आने की संभावना रहती है। किन्तु जब कोई व्यक्ति, परिवार या परिवार का समूह पक्के तौर पर लंबे समय के लिए अपना जन्म स्थान छोड़कर अन्य किसी स्थान पर जा बसता है और पुनः उसके अपने जन्म स्थान पर वापस आने की कोई संभावना नहीं होती तो वह स्थायी विस्थापन होता है। स्थाई विस्थापन हमारे इतिहास में बहुत बार हुआ और जब जब हुआ तब तब उसने कभी न भरने वाले घाव दिए। सन 1947 का समय हमारे देश में ऐसे ही विस्थापन का समय रहा। वर्ष 1947 में

हुए भारत पाक विभाजन ने अनगिनत लोगो को उनकी जड़ो से उखाड़ फेका। लोग अपनी जन्मभूमि अपनी संपत्ति छोड़-छाड़ कर भाग गए। लोगों को सिर छुपाने के लिए शरणार्थी कैंपों का सहारा लेना पड़ा। विभाजन की इस व्यवस्था को स्पष्ट करते हुए आशुतोष भटनागर ने लिखा हैं, "एक मोटे अनुमान के अनुसार विभाजन से जुड़ी इस ट्रेजडी में लगभग 20 लाख लोगों की हत्या हुई, 2 करोड़ से अधिक लोगों को अपने पूर्वजों की धरती छोड़कर अनजानी जगह पर विस्थापित होकर आना पड़ा जहां अनिश्चित भविष्य उनके सामने था, शरणार्थी शिविरों में नारकीय परिस्थितियों में जीवन यापन करते हुए इस समाज ने अपने श्रम और जिजीविषा के बल पर न केवल अपने आप को संभाला अपितु राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में अपना भरपूर योगदान दिया। आज भारत को हम जिस ऊंचाई पर देखकर गर्व का अनुभव करते हैं उसमें उस विस्थापित समाज की रक्त मज्जा शामिल है। स्वाधीनता के बाद भारत की राष्ट्रीय आकांक्षा को साकार करने के लिए पूरे देश ने अकथनीय श्रम किया है और अपना सर्वश्रेष्ठ दिया है। लेकिन अंतर मन में बिंधा विस्थापन का तीर आज भी उस पीढ़ी के लोगों को विचलित कर देता है।"[1]

भारत और पाकिस्तान का विभाजन भौगोलिक दृष्टि से नहीं बल्कि सांप्रदायिक दृष्टि से हुआ था। नरेन्द्र मोहन के अनुसार, "इसमें संदेह नहीं है कि बंटवारा एक चट्टान की तरह लोगों के सर पर टूट पड़ा था और जब तक वे साँस ले पाते, कुछ सोच पाते, सब कुछ मूल्यवान ,सदियों से अर्जित एक राष्ट्र का जज्बा , सांस्कृतिक एकता, जातीयता, मानवीय सम्बन्ध, साम्प्रदायिक आग की लपटों में जलकर राख हो गये थे।" [2] इसमें मुस्लिम बहुल इलाकों से हिंदुओं को भगा दिया गया और हिंदू इलाकों से मुसलमानों को। भारत के पश्चिम में मुस्लिम बहुल क्षेत्र को पश्चिमी पाकिस्तान तथा बंगाल प्रांत के मुस्लिम बहुल क्षेत्र को भारत से अलग कर पूर्वी पाकिस्तान बना दिया गया। इस विभाजन के पश्चात जिन हिंदू परिवारों के घर पाकिस्तान क्षेत्र में पड़ गए थे वे अपना सब कुछ छोड़कर भारत आ गए और जो मुस्लिम परिवार पाकिस्तान जाना चाहते थे वह वहां चले गए । इस तरह लाखों हिंदू और मुस्लिम परिवारों का विस्थापन उन क्षेत्रों में हो गया जहां पहले से उनका कोई संबंध नहीं था। विभाजन के पश्चात विस्थापन का जो सिलसिला शुरू हुआ वह लगातार कई वर्षों तक चलता रहा। एक स्थान से दूसरे स्थान, दूसरे से तीसरे और तीसरे से चौथे स्थान पर लगातार उनका स्थानांतरण होता रहा। करीब 10 से 15 वर्षों तक विस्थापितों को नए स्थान पर स्थाई निवास नहीं मिल पाया और इन 10- 15 वर्षों तक वे खानाबदोश की जिंदगी जीते रहे। लंबे अंतराल के बाद जब उन्हें स्थाई ठिकाना मिला तो पुनः उत्पन्न हुई नए सिरे से जिंदगी शुरू करने की समस्या । विभाजन की इस समस्या पर विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी लेखनी चलाई। किसी ने कविता, किसी ने कहानी, किसी ने उपन्यास तो किसी ने अन्य विधाओं के माध्यम से इस दंश की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति की। इस क्रम में फणीश्वरनाथ रेणु का भी नाम आता है जिन्होंने जुलूस उपन्यास के माध्यम से लंबे समय से विस्थापित जनता को अपनी कथा का विषय बनाया। रेणु जी संभवतः पहले ऐसे उपन्यासकार हुए जिन्होंने पूर्वी बंगाल से आए हुए शरणार्थियों को अपने उपन्यास के लिए चुना।

रेणु जी पूर्णिया जिले के रहने वाले थे। पूर्णिया उस समय के पूर्वी पाकिस्तान के सीमांत का एक जिला था । इसलिए पूर्वी पाकिस्तान से भारत आने वाले विस्थापितों को उन्होंने करीब से देखा था । उन्होंने देखा था कि किस प्रकार वे झुंड के झुंड विस्थापित होकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा रहे है । इस विस्थापन में कई चीखें, कई रुदन उन्होंने लंबे समय तक सुना था । यही कारण था कि वे उन विस्थापितों की पीड़ा से अलग नहीं रह सकें। इस उपन्यास के सृजन प्रक्रिया पर विचार करते हुए इसकी भूमिका में उन्होंने जो लिखा है वह उपन्यासकार की उस मनःस्थिति को दर्शाता है जो उन लोगो के दर्द को देखकर उत्पन्न हो रही थी। वे लिखते हैं- "यह जुलूस कहां जा रहा है, यह लोग कौन है, कहां जा रहे हैं, क्या चाहते हैं - मैं कुछ नहीं जानता। इस महाकोलाहल में अपने मुंह से निकला हुआ नारा-मुझे नहीं सुनाई पड़ता। चारों ओर एक बवंडर मंडरा रहा है, धूल का।.... किंतु इस भीड़ से अलग होने का सामर्थ्य मुझमें नहीं। इस जुलूस में चलने वाले नर - नारियों से, अपने आस-पास के लोगों से मेरा परिचय नहीं। लेकिन उनकी माया... ममता... मैं छिटककर अलग नहीं हो सकता।"[3] यह वह दर्द ही था जिसने परिचय ना होते हुए भी व्यक्ति के नाते व्यक्ति की पीड़ा को एक अद्भुत माया ममता से जोड़ दिया। लेखक की

इसी माया ममता का प्रतिफल था यह उपन्यास जुलूस। जुलूस उपन्यास का आरंभ ही होता है हल्दी चिरैया के एक सुरीले स्वर से- "का कस्य परिवेदना" अर्थात अपनी वेदना कहूं भी तो किससे । यह वेदना विस्थापन की वेदना है जो पूरे उपन्यास में पसरी हुई है। इस उपन्यास की केंद्रीय विषय वस्तु की ओर संकेत करते हुए गोपाल राय ने लिखा है, "इसका केंद्रीय विषय है -मनुष्य का क्षेत्रीय भावनाओं से मोह, अपने मूल परिवेश के प्रति मोह, मानवीय रिश्तों में जातीय है या क्षेत्रीय संकीर्णता आदि।"[4]

इस उपन्यास की कथा पूर्णिया जिले के गोड़ियर गांव के इर्द-गिर्द घूमती है। यह वह गांव है जिसमें पूर्वी पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थियों को बसाया गया था। इस बस्ती का नाम राज्य पुनर्वास उप मंत्री मोहम्मद नबी इस्माइल के नाम पर नबीनगर रखा गया। गोड़ियर गांव में पहले से ही 15 मैथिल परिवार, चार राजपूत परिवार, 20 ग्वाला परिवार विभाजन के लगभग 10- 15 वर्ष बाद इन्हें पूर्णिया जिले के गोड़ियर गांव में स्थाई निवास मिला। पूर्वी बंगाल के जुमापुर गांव से आए इन हिंदू शरणार्थियों की बस्ती को नबीनगर नाम दिया गया।, 8 धानुक और 13 गोढ़ी का परिवार रहता था। उस गांव के सभी परिवारों में अपने ढंग का एक अलग सा तालमेल था। उनके बीच आपसी मनमुटाव बहुत से थे परंतु तालमेल की एकमात्र वजह थी कि सभी उस क्षेत्र विशेष के स्थाई निवासी थे । उनका जन्म वहीं हुआ था। उनके पूर्वजों का निवास वही था। उनकी संपत्ति घर -परिवार सभी इस क्षेत्र के ही थे। वहीं दूसरी ओर उस गांव में नबीनगर नाम से जिस कॉलोनी को बसाया गया था, वह पूर्वी पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थियों की बस्ती थी जो अपने पूर्वजों की भूमि संपत्ति छोड़कर एक नए स्थान पर आ बसे थे । विस्थापित परिवारों की दारुण गाथा की शुरुआत तो उसी दिन हो गई थी जिस दिन उन्हें अपनी जन्मभूमि छोड़कर भागना पड़ा था । समय के साथ यह विपदा त्रासदी में तब बदलने लगी जब लगातार एक लंबे अंतराल तक उन्हें शरणार्थी कैंपों में अपनी पहचान विस्मृत कर जीना पड़ा। इस लंबी अवधि के बाद जब उन्हें स्थाई निवास मिला भी तो उनकी दुर्दांत गाथा का अंत नहीं हुआ अपितु स्थाई निवास के साथ पुनः शुरू हुआ एक नए ढंग का संघर्ष । यह संघर्ष आंतरिक और बाह्य दोनों स्तरों पर था। बाह्य स्तर पर गोड़ियर गांव के मूल निवासियों का इनसे विरोध था तो आंतरिक स्तर पर वे अपनी पहचान, परिवार और जन्मभूमि को खोने के दुख में अपने आप से संघर्षरत थे।

इस उपन्यास की कथा नबीनगर कॉलोनी बसने के साथ ही शुरू होती है और उसी के साथ शुरू होता है गोड़ियर गांव के मूल निवासियों से उनका विरोध । सरकार द्वारा इस कॉलोनी को नबीननगर नाम दिया गया है। किंतु गांव वाले इसे 'पाकिस्तानी टोला' कहकर पुकारते हैं । 'पाकिस्तानी टोला' शब्द उनके लिए हृदय में गहरा क्षोभ उत्पन्न करता है क्योंकि हिंदू होने के कारण ही उन्हें अपनी भूमि छोड़कर यहां बसा पड़ा, अपने लोगों से बिछड़ना पड़ा। पाकिस्तान की मांग ने ही उनके जीवन में इतनी उथल-पुथल मचाई थी। अब फिर से उन्हें इस शब्द का पर्याय बना देना उन्हें सहय नहीं था। इसलिए वह बार-बार अपनी बस्ती को 'पाकिस्तानी टोला' कहे जाने का विरोध करते हैं । किंतु उस गांव के निवासी उनकी इस पीड़ा को नहीं समझते और बार-बार इसी शब्द का प्रयोग करते हैं। इस उपन्यास के एक पात्र गोपाल पाइन जो नबीननगर का निवासी है, उसे सरकार पर विश्वास है कि चाहे गांव वाले उन्हें कुछ भी कहें लेकिन सरकार उनके साथ है। परन्तु जब डाकिया चिट्ठी पर पाकिस्तानी टोला लिखकर लाता है तो उसका यह भ्रम दूर हो जाता है और उसका आक्रोश फूट पड़ता है। वह कहता है, "पियोन साहेब , यह क्या बात है। 'इंग्रेजी' और 'बांग्ला' में साफ-साफ लिखा हुआ है नोबीननगर और आप उसके ऊपर से 'अपाना-फरमान' लिखा है - पाकिस्तानी टोला? आप ही लोग माने सरकारी 'कम्मोचारी' होकर ऐसा कीजिएगा तो यह राज कैसे चलेगा? एँ! बोलिए? यहां मिनिस्टर साहब आए थे - आपको मालूम है? गांव का नाम हुआ यह भी मालूम है ?तख्ती लटका था, यह भी मालूम है... ?" [5]

विस्थापन से उत्पन्न भेदभाव उनके मन को हर दिन तार -तार करता है। इसका असर उनके रोजगार पर पड़ता है। एक नए सिरे से रोजगार जमाना मुश्किल तो होता ही है पर विस्थापितों के लिए यह और भी कठिन हो जाता है क्योंकि एक नई जगह पर उनका विरोध भी तीव्र होता है। नबीनगर कॉलोनी का एक निवासी अंदू जब

अपने रोजगार के लिए बिस्कुट बेचने गोड़ियर गांव जाता है तो उसे घोर विरोध का सामना करना पड़ता है। चौधरी का लड़का उसे गोमांस खाने वाला कहकर उसका काम-धंधा चौपट करने की कोशिश करता है। गोमांस खाने की बात एक हिंदू के लिए बेहद ही शर्मनाक मानी जाती है। चौधरी के लड़के का उद्देश्य तो उसका रोजगार खराब करना था किंतु इस शब्द ने नबीनगर वालों के घाव को ताजा कर दिया। इसलिए गोपाल पाइन कहता है, "बंगाली कंगाली कहे , हम सह लेंगे । जब कंगाल हो गए हैं तो लोग कंगाल ही कहेंगे । पाकिस्तानी बोलते हैं- यह भी सहा जा सकता है। लेकिन यह सरासर गोमांस खाने की बात कहना -इसको कैसे सहा जा सकता है ? आप ही लोग विचार कीजिए।"[6]

इस उपन्यास में नबीनगर कॉलोनी के अन्य पात्रों के माध्यम से रेणु जी ने विस्थापन के बाह्य दर्द को दिखाने का प्रयास किया है तो वहीं दूसरी तरफ पवित्रा के माध्यम से विस्थापन की आंतरिक पीड़ा को दर्शाया है। पवित्रा इस उपन्यास की एकमात्र ऐसी पात्र है जो अपनी कॉलोनी के लोगों के बीच भूमि का विभेद पाटकर भाईचारा स्थापित करना चाहती है। वह बार-बार अपने लोगों को समझाती हैं कि "हम लोगों का भाग्य अच्छा है कि इस जिले में हमें बसाया गया । यहां धान और पाट की खेती होती है, हम भी अपने देश में धान और पाट की खेती करते थे। यहां के लोग भी मछली- भात खाते हैं। गांव-घर, बाग- बगीचे, पोखरे और नदी - सब कुछ अपने देश जैसा...।"[7] विभेद की खाई मिटाने के लिए वह एक ओर अपने लोगों के बीच सामंजस्य बिठाने का प्रयास करती है तो दूसरी तरफ गोड़ियर गांव के लोगों को भी वह अपने साथ मिला-जुला कर रखना चाहती है ताकि दोनों एक दूसरे के प्रति मेलजोल बढ़ा सके। वह नबीनगर कॉलोनी में मंगलवार के दिन होने वाले कीर्तन में गोड़ियर गांव के निवासियों को भी आने से नहीं रोकती।

नबीनगर कॉलोनी में स्कूल खुलने वाला था| पवित्रा चाहती है कि उसमें गोड़ियर गांव के अन्य कॉलोनियों के भी बच्चे पढ़े| इसलिए वह बच्चों को भेजने की गुजारिश करने गोड़ियर गांव जाती है और लोगों से निवेदन करती है कि वह अपने यहां के बच्चों को नबीनगर कॉलोनी में पढ़ने के लिए भेजें। यह उसका प्रयास ही था कि अंततः तालेवर गोढ़ी को भी उसकी बात में हामी भरनी पड़ी और विरोधों के बावजूद गोड़ियर गांव और नबीनगर के निवासियों को मिलाकर तालेवर गोढ़ी द्वारा भोज देने की व्यवस्था की गयी । इन सभी प्रयासों के बावजूद पवित्रा का मन इस विस्थापन को पूर्णतः स्वीकार नहीं कर पाया था| वह बहुत व्यावहारिक और सुलझी हुई महिला थी परन्तु फिर भी जब मातृभूमि से जुड़ा कोई प्रसंग छिड़ता, तो उसकी आंतरिक वेदना गहरी हो जाती| उसकी इस वेदना का बहुत ही सूक्ष्म अंकन रेणु जी ने इस उपन्यास में किया है । जैसे कि वह हल्दी चिरैया को देखकर अपने यहां की चिड़िया को याद करती है। यथा- "यही एक पखेरू है जो उसके देश मे नहीं होता। या होता भी हो तो पवित्रा ने कभी नहीं देखा।"[8] गोड़ियर गांव का अछिमुद्दीन हाट भी उसे अपनी जुमापुर की याद दिलाता है| वह कहती हैं, "अच्छा बोलिए तो पाइन मास्टर अछिमुद्दीनपुर हाट हम लोगों के जमापुर से जैसा दिखलाई पड़ता था।... मान लीजिए आप जुमापुर के ठाकुर पोखरे पर पूरब मुंह खड़े हैं और दूर दिखलाई पड़ रहा है अछिमुद्दीन का काला जंगल| वह पेड़ ठीक इसी तरह टेढ़ा पेड़ उसे रास्ते में भी था| आपको याद है ? देखिए तो!! बोलिए तो!!"[9] धीरे-धीरे वह उसे गांव के सभी उसे कॉलोनी के सभी लोगों को वह दृश्य दिखलाती है और सभी एक बार फिर जुमापुर की याद में खो जाते हैं| उस दृश्य को देखकर कालाचाँद को अपने बचपन की याद आने लगी| बचपन की सभी स्मृतियाँ जो जुमापुर से जुड़ी थी वहां के जुलुस, मुहर्रम, मोटरसाइकिल, सिनेमा, मछली से भरी हुयी नदी, खजूर का पेड़, सब उसके सामने सजीव हो उठे| लाखिकांत सरकार को अपने जुमापुर के सांड की याद ताजा हो गयी| उस दृश्य को देखकर गोपाल पाइन की आँखों से आंसू झरने लगे| वह अपनी व्यथा व्यक्त करता हुआ कहता है- "ऐ की देखा ले ? यह क्या दिखलाया तुमने? अपने गाँव की छवि देखकर कलेजा स्थिर रह सकता है भला! मै एकदम जुमापुर पहुँच गया था ।" [10] इस याद का बहुत गहरा असर होता है| जुमापुर निवासी शरणार्थियों को रात भर नींद नहीं आती है| रात के अंधकार में रंग भी उन्हें अछिमुद्दीनपुर हाट की रोशनी की तरह लगते है । रात

भर वे जुमापुर के ही ख्यालों में रहे | वहीं की याद, चर्चा उनके कानो में गूँजती रही| किसी ने खाया तो कोई यूं ही लेट गया | इस दृश्य ने जैसे उनके जख्मों को हरा कर दिया था।

पवित्रा इस उपन्यास की वह पात्र है जिसने इस विभाजन में अपने पूरे परिवार को खो दिया| कई बार तो वह स्वयं को इसका कारण मानती है। उपन्यास में एक कथन है जिसमें कालाचाँदकी माँ उसे होश में लाने का प्रयास करती है-

"-दीदी ठाकरून!
...का कस्य परिवेदना!
...नहीं। मैं क्या करूं ? आमी धरा देबो ना ? मैं मानूँगी? आमि बांचबो। मैं जीना चाहती हूँ !
-दीदी ठाकरून ?
- आमि बाँचते चाय ...?
-सोपोन देख सो? कालाचाँद की माँ ने कहा -कीर्तन तो समाप्त हो गया है।"[11]

पवित्रा कभी कॉलोनी वालों को यह आभास नहीं होने देती कि वह इस विस्थापन की पीड़ा से आहत है किन्तु वह प्रत्येक दिन भीतर-भीतर इस पीड़ा से घुलती जाती है। वह बार-बार पुरानी स्मृतियों में खो जाती है| वह याद करती है- "उसकी आंखे खुली थीं - हिंदुस्तान के एक शरणार्थी कैम्प में,कटिहार स्टेशन पर। होश में आते ही पवित्रा ने पूछा था- बाबा कहाँ हैं? माँ कहाँ ?और लोग कहाँ? किसी ने कोई जबाव नहीं दिया । उसने फिर कोई सवाल नहीं किया। एक लंबी सांस लेकर वह चुप है।...घर से भागते समय बाबा के रचे हुए कीर्तन की पोथी वाली झोली वह कलेजे से सटाकर निकली थी।"[12] कालाचाँद की माँ से उसे पता चलता है कि उसका मंगेतर विनोद,उस हिंसक जुलूस की अग्नि में मारा गया । उसकी वेदना तब भी पुनर्जीवित हो उठती है जब किसी से उसे स्नेह और प्यार मिलता है| विस्थापन ने उसे पूरी तरह तोड़ दिया है इसलिए वह अपनी पुरानी स्मृतियों को याद ही नहीं करना चाहती| परन्तु यह दर्द ऐसा है जो रह रहकर बार- बार जीवित हो उठता है| जब नूना मांही की स्त्री रुपिया पवित्रा को बेटी कहकर पुकारती है तो वह रो पड़ती है और नरेश वर्मन द्वारा इसका कारण पूछने पर कहती है , "नरेश, तुमने ठीक कहा है| कुछ लोगों को हर बात पर रोना आता है | नाच देखकर मुझे क्यों रोना आया- मैं नहीं जानती किन्तु कालाचांद की माँ के बाद मेरी यह रुपिया माँ- दो माताएं... इन्हीं दो महिलाओं के मुह से मैंने प्यार-भरा संबोधन सुना - बेटी !!"[13] यह विस्थापन ही था जो बार-बार कभी एकांत में, कभी भीड़ में तो कभी किसी का स्नेह पाकर उसे अपने जुमापुर के ख्यालों में ले जाता| इसकी टीस उसे कभी अपने से मुक्त नहीं होने देती और अकारण कभी-कभी आँखों से झलक पड़ती है |

बाह्य संघर्ष की बात की जाए तो हम देखेंगे की नबीनगर कॉलोनी के लोग किसी दूसरे स्थान से आकर गोडियर गांव में बसे हैं इसलिए उन्हें नए स्थान पर बसने की जितनी समस्याएं हो सकती हैं, उन सबका सामना करना पड़ता है। जैसे- पुनर्वास की समस्या, रोजगार की समस्या, जातिगत भेदभाव की समस्या, सामाजिक भेदभाव की समस्या , संस्कृतिक भिन्नता की समस्या आदि। पूर्वी बंगाल से जो शरणार्थी आए उनकी यह सारी समस्याएं पश्चिमी पाकिस्तान से पंजाब आए शरणार्थियों की अपेक्षा कुछ अधिक थी। इस संदर्भ में सुरेंद्र चौधरी लिखते हैं, "वस्तुतः पुनर्वास की समस्या का काल संबंध उतना मौलिक नहीं होता जितना देश का संबंध होता है। धर्म संस्कार से एक होकर भी. दो समुदायों का भेद कहीं जडता की हद तक बना रह जाता है तब समस्या गंभीर हो जाती है। पाकिस्तानिया टोला के ये गरीब हिंदू पूर्णिया की धरती पर अजनबी बन कर रह जाते हैं। तमाम सदिच्छाओं और सरकारी सद्भावना के बावजूद। शायद उनका इस देश के साथ उतना एका भी ना हुआ जितना पश्चिमी पंजाबी जन समुदाय का हुआ।"[14]

पश्चिमी पाकिस्तान से जो शरणार्थी भारत के पंजाब क्षेत्र में आए , उनके लिए भौगोलिक सामाजिक स्थिति समान थी। जो शरणार्थी पूर्वी बंगाल से भारत के बंगाल प्रांत में आए उनके लिए भी अपेक्षाकृत स्थिति सामान्य थी किंतु जो शरणार्थी बच गए थे उन्हें बिहार असम आदि क्षेत्रों में बसाया गया था। इन राज्यों से बंगाल की संस्कृति अलग थी। इस कारण उन शरणार्थियों को समस्याओं का सामना करना पड़ा। नबीनगर कॉलोनी के लोग इन्हीं बचे हुए शरणार्थियों में से थे। उनका रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा गोड़ियर गांव के मूल निवासियों से भिन्न था। यह भिन्नता दूर से देखने पर तो छोटी लगती है लेकिन साथ रहने वाले व्यक्तियों के लिए यह बड़ी समस्या का आकार ले लेती है।

नबीनगर कॉलोनी के वासियों ने अपनी पहचान सुरक्षित रखने के लिए अपनी कॉलोनी के बाहर नबीनगर नाम की तख्ती टांग दी थी। गांव वाले उनका विरोध करने के लिए उस तख्ती को उखाड़ कर फेंक देते थे। यह एक बार नहीं कई बार हुआ। नबीनगर वाले भी गोडियर गांव वालों को अपने जैसा नहीं समझते। उनका मानना है कि "प्रसाद टाइटल अपने गांव के किसी आदमी के नाम में लगा दो , देखोगी फिट नहीं करेगा। नाम की माफिक चेहरा भी होना चाहिए। 'आपना' देश फिर 'आपना' देश! पर -भूमि कैसी भी हो आखिर पर- भूमि ही है।"[15] उस गांव का घर, बाग -बगीचे, पोखर- नदी, धान- पाट की खेती, सब कुछ इस देश जैसा होते हुए भी उन्हें अपना- सा नहीं लगता था उनका मानना है था कि "...कहां अपना देश और अपने देश की मिट्टी और अपने देश का चावल , और कहां इस अद्भुत देश का 'आजगुबी व्यापार'।"[16] अद्भुत देश ,अद्भुत देशवासी और विचित्र व्यापार की यह भावना दोनों पक्षों में समान रूप से थी इसलिए दोनों एक दूसरे से जुड़ नहीं पा रहे थे और एक दूसरे को विचित्र दृष्टि से देखते थे। गोड़ियर गांव के निवासियों का भी मानना है कि यह लोग बंगाल से आए हैं इसलिए यह मुसलमान होंगे और यह गोमांस खाते होंगे। वे एक दूसरे को समझाते हैं कि "इनके हाथ का बिस्कुट खाओगे? यह लोग गोमांस खाते हैं। ....सभी को भागते समय गोमांस खिलाया गया है पाकिस्तान में।"[17] इस प्रकार का मिथ्या प्रचार एक दूसरे की संस्कृति न जानने के कारण होता है और इसके मूल में है- विस्थापन।

विस्थापन दो क्षेत्र के लोगो के बीच रहस्यात्मकता की सृष्टि करता है| इस कारण सामाजिक भेदभाव का जन्म होता है | इसका भी बड़ा सूक्ष्म अंकन इस उपन्यास में रेणु जी ने किया है | नबीनगर वालों का रहन-सहन, खान-पान, वेश- भूषा, सभी गोड़ियर गाँव के लोगो के लिए एक विचित्र चीज है। वे उसे जानने के लिए प्रयासरत रहते हैं। रात के अंधेरे में कभी रब्बी पासवान, कारे मंडल तो कभी जयराम सिंह किसी न किसी बहाने से उनके कॉलोनी जाते हैं और उनके जीवन शैली को जानने की कोशिश करते हैं। रब्बी पासवान और कारे मण्डल कहते है "बड़े क़ानूनची लोग हैं। कॉलोनी के कानून न जाने कैसा है कि सभी कहते हैं -कॉलोनी का कानून नहीं जानते? "[18] दोनों पक्ष के लोग एक दूसरे को रहस्यमय दृष्टि से देखते हैं । दोनों के लिए एक दूसरे का व्यपार, एक दूसरे के क्रियाकलाप अजीब है। बंगाली और बिहारी में अंतर करता हुआ जयराम सिंह कहता है "यह आप लोगों का बंगला मुल्क तो है नहीं कि आदमी जिस काम से निकले बस वही एक काम करें । हम लोगों के बिहार में एक आदमी जब किसी तरफ निकलता है तो उधर का सभी काम करके वापस लौटता है । हमारे देश में लोग गंगा -स्नान भी करने जाते हैं और सुंगठी (सूखी मछली) का व्यापार भी । आप लोगों की तरह 'अकिल ज्ञान' और 'संगठन' यदि इस देश में रहता तो फिर...?"[19] यह एक दूसरे का पार्थक्य ही है कि वे मानसिक और संवेदनात्मक रूप से एक दूसरे से जुड़ नहीं पाते | यह पार्थक्य बढ़ता ही जाता है। एक उदाहरण उस समय का भी देखा जा सकता है जब तालेवर गोढ़ी द्वारा सह भोज का आयोजन किया गया था। उस समय नबीनगर वालों की रुचि को ध्यान में रखते हुए भोज में पोलाव को भी शामिल किया गया था। इसका गोड़ियर गांव के मूल निवासियों द्वारा विरोध हुआ। चौधरी का कथन देखिए, "खिलाया न सभी को मुसलमानी खाना! कौन कहता है कि पोलाव मुसलमानी खाना नहीं? हिंदू का खाना है खीर- पूरी ! सबकी जाति मारी गई । अरे, इस गोढिया की बुद्धि बुढ़ापे में भ्रष्ट हो गई है। खुद कंठी तोड़कर मछली खाना शुरू कर दिया और सारे गांव के लोगों को पाकिस्थनियाँ टोले की औरतों के हाथ का पकाया हुआ मुसलमानी खाना खिला दिया। सबको 'पतिया- प्रायश्चित' करना होगा। गोबर, बालू और तुलसी का पत्ता निगलना

होगा।"[20] इस कथन में चौधरी का आक्रोश स्पष्ट है| ऐसा नहीं है कि दोनों पक्षों के बीच सामंजस्य का प्रयास नहीं होता| यह प्रयास कई बार तालेवर गोढ़ी द्वारा तो कई बार पवित्रा द्वारा होता है लेकिन फिर भी संस्कृति की भिन्नता आड़े आ जाती हैं | यह रह -रहकर उनके आपसी संबंधों को प्रभावित करती है और उन्हें सामान्य नहीं होने देती |

इस तरह हम देखेंगे कि दोनों ही पक्ष एक दूसरे को स्वीकार करने में असमर्थ है। दोनों एक दूसरे के प्रति असमानता का भेदभाव रखते हैं। यह असमानता विस्थापन के कारण दो भिन्न संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न होती है। एक साथ रहने वाले लोंगो में हर मोड़ पर विभेद जब दिखता है तो यह अनुमान करना कठिन नहीं है कि उनका जीवन कितना विकट होगा। समय के साथ-साथ यही विभेद उनके अंतर्मन में बैठ जाता है, वे इसका कारण तलाशते है तो जवाब मिलता है- विस्थापन। ऐसे में विस्थापन त्रासदी बन जाती है।

<u>संदर्भ-सूचि:</u>

1. सं०- लक्ष्मी शंकर वाजपेयी /साहित्य अमृत/ आसफ अली रोड न्यू दिल्ली /मासिक पत्रिका/ अगस्त 2022// वर्ष-28 ,अंक-1/ पृ०-215
2. विभाजन की त्रासदी भारतीय कथा दृष्टि/ नरेंद्र मोहन/ भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली , दूसरा संस्करण 2010/ पृ०-13
3. जुलूस/ फणीश्वरनाथ रेणु /राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.1 बी,नेताजी सुभाषमार्ग,दरियागंज ,नई दिल्ली-110002/दूसरा संस्करण-2022 /भूमिका
4. गोपाल राय /हिन्दी उपन्यास का साहित्य / राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली/पृ० -252
5. जुलूस / फणीश्वरनाथ रेणु /राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.1बी, नेताजी सुभाषमार्ग, दरियागंज ,नई दिल्ली-110002/दूसरा संस्करण-2022 /पृ०-15
6. वही, पृ०-14
7. वही, पृ०-9
8. वही, पृ०-9
9. वही, पृ०-57
10. वही, पृ०-58
11. वही, पृ०-31
12. वही, पृ०-66
13. वही, पृ०-107
14. सं०- किशन कालजयी /संवेद / नई किताब प्रकाशन , दिल्ली- 110032 /मासिक पत्रिका/ मार्च 2021/ अंक-03/ पृ०-110
15. जुलूस/फणीश्वरनाथ रेणु /राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.1 बी, नेताजी सुभाषमार्ग,दरियागंज ,नई दिल्ली-110002/दूसरा संस्करण-2022 / पृ०-9
16. वही, पृ०-10
17. वही, पृ०-15
18. वही, पृ०-27
19. वही, पृ०-33
20. वही, पृ०-99